द्वितीय अध्याय

मुक्तिबोध एवं उनका आलोचनात्मक अवदान

आधुनिक हिंदी साहित्य में मुक्तिबोध को जनवादी कवि एवं आलोचक माना जाता है। उनका आलोचनात्मक अवदान जनसरोकारात्मक पक्ष के लिए प्रतिबद्ध है। प्रत्येक साहित्यकार अपनी रचनाप्रक्रिया के वैकल्पिक पक्ष के विषय में चयन करते हैं। मुक्तिबोध का 'चयन' साहित्य और समाज के बनते-बिगड़ते संबंध का 'कार्य-कारण' संदर्भ के तार्किक पहलू को उजागर करता है। इसीलिए उनकी आलोचनात्मक रचना-प्रक्रिया अन्य आलोचकों की तुलना में सारगर्भित, तार्किक एवं वैज्ञानिक हैं।

छायावाद एवं प्रगतिवाद के अवसान के बाद साहित्य में एक नया दौर आया जिसे 'प्रयोगवाद' कहा गया। सन् 1943 में हिंदी के सात कवियों का संकलन 'तारसप्तक' नाम से प्रकाशित हुआ। इनमें सात कवियों की सूची इसप्रकार हैं-

(क) 'तारसप्तक' (1943) - 1. अज्ञेय, 2. गजानन माधव मुक्तिबोध, 3. गिरिजा कुमार माथुर, 4. प्रभाकर माचवे, 5. नेमिचंद्र जैन, 6. भारतभूषण अग्रवाल, 7. रामविलास शर्मा

(ख) 'दूसरा सप्तक' (1951) - 1. भवानीप्रसाद मिश्र, 2. शकुन्तला माथुर, 3. हरिनारायण व्यास, 4. शमशेर बहादुर सिंह, 5. नरेशकुमार मेहता, 6. रघुवीर सहाय, 7. धर्मवीर भारती

(ग) 'तीसरा सप्तक' (1959) - 1. प्रयागनारायण त्रिपाठी, 2. कीर्ति चैधरी, 3. मदन वात्स्यायन, 4. केदारनाथ सिंह, 5. कुँवरनारायण, 6. विजयदेव नारायण साही, 7. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना।

तारसप्तक के संपादक की हैसियत से 'अज्ञेय' ने इन्हें 'राहों का अन्वेषी' कहा है। गजानन माधव मुक्तिबोध भी इसी दौर के कवि एवं आलोचक हैं। उनकी प्रमुख रचना इस प्रकार हैं-

कविता: 'तारसप्तक', 'चाँद का मुँह ठेढ़ है', (1964) 'भूरी-भूरी खाक धूल', (1980)

उपन्यास: विपात्र (1970)

कहानी:

(1) काठ का सपना (1967)

(2) सतह से उठता आदमी (1971)

आलोचना: 'कामायनी: एक पुनर्विचार', 'भारत: इतिहास और संस्कृति', 'नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध', 'नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र', 'समीक्षा की समस्याएँ', 'एक साहित्यिक की डायरी'।

मुक्तिबोध के लगभग इन समस्त रचनाओं में जनपक्ष का उद्बोधन हुआ है। वे सतही तौर पर जनवादी लेखक हैं। वैचारिक दृष्टि से वे प्रगतिशील मार्क्सवादी साहित्यिक विचारधारा से प्रभावित हैं, लेकिन रचनाकर्म में 'स्वविवेक' के भी पक्षधर हैं। स्वविवेक से तात्पर्य है- विचारधारा से परे साहित्यिक एवं जनवादी

पक्षधर्मिता एवं प्रतिबद्धता। मुक्तिबोध इन दोनों संदर्भों में साहित्यिक एवं राजनीतिक विचारक के रूप में सजग एवं सचेत आलोचक हैं। उनकी रचना-प्रक्रिया के केन्द्र में मानव समाज एवं उसके जनसरोकारात्मक पक्ष का विवेचन अन्य आलोचकों की तुलना में अधिक प्रखर, सारग्रभित एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से हुआ है। आधुनिक मानव समाज के विकास में 'चिंतन' एवं 'तर्क' की प्रधानता रही है। मुक्तिबोध 'चिंतन' एवं 'तर्क' के वैज्ञानिक एवं विश्वात्मक कसौटी को प्रमुखता से शब्दबद्ध किया है- "युग और समय के बंधन से ऊपर कला की अपील होते हुए भी यह स्वयं सिद्ध है कि उसका रूप एवं विकास बहुत अंशों में समय के द्वारा हुआ है। कला सब समय के लिए और विश्वात्मक होते हुए भी वह अपने समय और जन्मस्थान (यानी देश) से विच्छिन्न नहीं हो सकती।"[1] प्रत्येक युग की कला युगीन संदर्भ को अभिव्यंजित करती है। वह समय और समाज के सरोकार से अलग नहीं हो सकती।

मुक्तिबोध ने कला के विश्वात्मक रूप के परिवर्तनकारी पक्षों का उल्लेख किया है- "एकदेशीयता जब कला की सीमा रह जाती है, यानी उसकी अपील जब उसके आगे बढ़ने नहीं पाती, तब वह मर जाती है।"[2] कला की जीवंतता उसके सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रसार से प्रगाढ़ होता है। इसीलिए एक संवेदनशील कलाकार की कला समाज के किसी-न-किसी उद्देश्य को रेखांकित करता है। इस संदर्भ में रामधारी सिंह 'दिनकर' के विचार द्रष्टव्य हैं- "कवि-कल्पना और सामाजिक जीवन के बीच सामंजस्य स्थापित किए बिना साहित्य आयुष्मान नहीं हो सकता। छोटी-छोटी, क्षणिक और हलकी भावनाओं का गीत-प्रणयन भी अपनी जगह मूल्य रखता है, किंतु कलाकारों में श्रेष्ठ तो वही गिना

जाएगा जो जीवन के किसी महान प्रश्न पर महान रूप से कला का रंग छिड़क सके। सच तो यह है कि ऊंची कला कोशिश करने पर भी अपने को नीति और उद्देश्य के संसर्ग से बचा नहीं सकती, क्योंकि नीति और लक्ष्य जीवन के प्रहरी हैं और कला जीवन का अनुकरण किए बिना जी नहीं सकती। चूंकि जीवन-मंथन कलाकार का स्वभाव है और उसका जीवन कल्पना से उद्वेलित होकर उसकी ओर उन्मुख रहता है जो सुंदर और महान है, इसलिए उच्च कला की सभी कृतियों में प्रवेश पाने के लिए नीति अपना मार्ग आप ढूंढ लेती है, उसे कलाकार के सम्मान की प्रतीक्षा नहीं रहती।"[3] कला का उद्देश्य समाज को गतिशीलता प्रदान करना है। क्योंकि इससे समाज में जीवंतता बना रहता है।

साहित्य जीवन के विविध भावात्मक एवं कलात्मक पक्षों का विश्लेषण करता है। इन दोनों पक्षों का खास दृष्टिकोण भी होता है। मुक्तिबोध साहित्य में दृष्टिकोण को महत्वपूर्ण स्थान दिए हैं- "साधारणतया, साहित्य के दो पहलू रहे हैं। एक तो वह जिसमें मनोरंजन हो, और वह जिससे हम अधिक मानवीय होते चलें। पहला केवल मनोरंजन ही मनोरंजन है, उसके आगे कुछ नहीं। और दूसरा किसी आदर्श को लेकर चलता है।"[4] मुक्तिबोध ने साहित्य एवं उसके दृष्टिकोण की पक्षधार्मिता के विषय में अपने विचार अभिव्यक्त किये हैं। मनोरंजनकपरक साहित्य से जनता में मनोरंजन की अभिव्यक्ति होती है, जिसका प्रभाव जनता पर तात्कालिक होता है। आदर्शपरक साहित्य किसी न किसी आदर्श और विचारधारा को अभिव्यक्त करती है। प्रेमचंद का आदर्श भारतेंदु के आदर्श से भिन्न है। इसीलिए साहित्य में युग एवं परिवेश की आलोचना को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। प्रेमचंद ने 'साहित्य में समालोचना' निबंध में लिखा है- "साहित्य में

समालोचना का जो महत्व है उसको बयान करने की जरूरत नहीं। सद्साहित्य का निर्माण बहुत गंभीर समालोचना पर ही मुनहसर है।"[5]

मुक्तिबोध, साहित्य और आलोचना के संदर्भ में 'दृष्टिकोण' को प्रमुख स्थान देते हैं। मनोरंजन और आदर्श दो अलग पहलू है, जो समाज में हमेशा से मौजूद रहा है। लेकिन 'मानवी समाज' के आदर्श एवं उसके वैचारिक पक्ष का भी होना आवश्यक है। 'मानवीयता' प्रत्येक समाज के जीवनमूल्य एवं उसके आदर्शात्मक विकास को लेकर चलता है। इसीलिए इसकी सार्वभौमिकता बनी रहती है। साहित्य में आदर्श का संदर्भ साहित्यकार की साहित्यिक दृष्टि को उजागर करती है। मुक्तिबोध के अनुसार- "जब भावना-प्रधान प्राणी बाह्य वास्तविकता की ओर मुड़ता है, और अपनी सहज ईमानदारी से वशीभूत होकर उसके प्रति अपने को जिम्मेदार ठहराता है, तभी से उस साहित्य की उत्पत्ति है जिसे हम आदर्शवादी साहित्य कहते हैं, क्योंकि वह जीवन पर सोचने लगता है, जीवन की ट्रेजेडीज उसके विरोध और विसंगतियाँ उसके मन में बैठ जाती हैं।"[6]

प्रत्येक युग विशेष की खास आलोचनात्मक प्रवृत्ति होती है। और उस युग के कला एवं साहित्य का भी विविध संदर्भ होता है। मुक्तिबोध इस दृष्टि से आलोचना के विविध आयाम रखते हैं- "कला तभी तक जीती-जागती रहती है जब तक कि लेखक का वर्ण्य वस्तु के प्रति भावात्मक संबंध हो। जिसप्रकार सोचना या विचार करना ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक साधन है, उसीप्रकार भावना भी जीवन का ज्ञान प्राप्त करने का एक कलात्मक साधन है।"[7] कला की जीवंतता एवं उसकी प्रगतिशीलता वर्ण्य-वस्तु एवं उसके भावात्मक संबंध पर निर्भर करता

है। कला के संदर्भ में प्रयोगवादी कवि अज्ञेय का मानना है- "कला सामाजिक अनुपयोगिता की अनुभूति के विरूद्ध अपने को प्रमाणित करने का प्रयत्न- अपर्याप्तता के विरूद्ध विद्रोह है।"[8] अर्थात् कला जीवन के विविध आयाम एवं उसके विकसित सौन्दर्यबोध को उजागर करता है। यह समाज के बनते बिगड़ते स्वरूपों की व्याख्या करता है।

मुक्तिबोध की प्रसिद्ध कृति 'एक साहित्यि की डायरी' जिसके संबंध में नामवर सिंह ने कहा है- "कुछ लोग दुनियाँ से बस बहस करते हैं तो सिर्फ अपने, किंतु कुछ थोड़े से लोग ऐसे भी होते हैं जो दुनियाँ से बहस करने की प्रक्रिया में अपने-आप से भी बहस चालू रखते हैं। मुक्तिबोध ऐसे ही थोड़े-से लोगों में थे और उनकी एक साहित्यिक की डायरी ऐसी ही जीवंत बहस का सर्जनात्मक दस्तावेज है जिसमें भाग लेने का लोभ संवरण करना कठिन है।"[9] मुक्तिबोध ने अपनी आलोचना में संवाद पक्ष को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। कोई भी कला एक लंबी अनुभूति एवं अनुभव की प्रक्रिया से गुजरता है। जिसके संबंध में उन्होंने लिखा है- "कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव-क्षण। दूसरा क्षण है इस अनुभव का अपने कसकते-दुखते हुए मूलों से पृथक हो जाना, और एक ऐसी फैंटेसी का रूप धारण कर लेना, मानो वह फैन्टेसी अपनी आँखों के सामने ही खड़ी हो। तीसरा और अंतिम क्षण है इस फैन्टेसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया का आरंभ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक एक गतिमानता। शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया के भीतर जो प्रवाह होता है। प्रवाह में वह फैन्टेसी अनवरत रूप से विकसित परिवर्तित होती हुई आगे बढ़ती जाती है। इसप्रकार वह फैन्टेसी अपने मूल रूप को बहुत कुछ त्यागती हुई नवीन रूप धारण करती है।

जिस फैन्टेसी को शब्दबद्ध करने का प्रयत्न किया जा रहा है वह फैन्टेसी अपने मूल रूप से इतनी दूर चली जाती है कि यह कहना कठिन है कि फैन्टेसी का यह नया रूप अपने मूल रूप की प्रक्रिया के दौरान जो सृजन होता है- जिसके कारण कृति क्रमश विकसित होती जाती है- वही कला का तीसरा और अंतिम क्षण है।"[10]

मुक्तिबोध कलात्मकता की प्रक्रिया और उसके अनुभव तत्वों का विश्लेषण बड़ी ही ईमानदारी से किया है। व्यक्ति जब समाज और समाज के बीच घट रहे घटनाओं का मूल्यांकन अनुभूत तत्वों से करता है, तब वह चाहे साहित्य हो, या कला उसकी जीवंतता और जीवनानुभव, दोनों ता-उम्र प्रासंगिक रहता है। मुक्तिबोध लगातार 'एक साहित्यिक की डायरी' में स्व-संवाद, उनके स्वयं के आंतरिक एवं बाह्य द्वंद्व का पर्याय है। आलोचना का वैचारिक पक्ष तटस्थ होता है, क्योंकि वह साहित्य के 'सतही पक्ष' के दर्पण से देखता है। उसमें जितना 'पर' का 'संवाद' होता है उतना ही 'स्व' का संघर्ष भी। मुक्तिबोध में 'स्व-संघर्ष' की प्रखरता उच्च शिखर पर है। फैण्टेसी, विचार एवं सृजन प्रक्रिया का संबंध युगीन संदर्भ से होता है, जो समाज और साहित्य को अभूतपूर्व रूप से प्रभावित करता है। इसीलिए साहित्य के विभाजन एवं उसके कालखंड का विशेष ध्यान रखा गया है। छायावाद के पतन के पश्चात् प्रगतिवाद का उदय हुआ और फिर प्रयोगवाद। प्रयोगवाद अपने कथ्य एवं शिल्प में भिन्न हैं। क्योंकि तत्कालीन युगीन संदर्भ एवं उसका घटनात्मक प्रभाव समाज में भिन्न था। सामाजिक-राजनीतिक परिस्थिति भिन्न थी। सामाजिक-राजनीतिक घटनात्मक प्रक्रिया समानान्तर नहीं होती है। इस संदर्भ में मुक्तिबोध का मानना है- "साहित्य का विकास और

सामाजिक-राजनैतिक घटनाओं का क्रम समानान्तर रेखाओं पर नहीं चला करता, यानी अनिवार्य रूप से नहीं। समानान्तर रूप में चलाया जा सकता है, परंतु हमेशा यह संभंव नहीं। घटनाओं से समानान्तर साहित्य का विकास तो तभी संभंव है जब उन घटनाओं को ऐतिहासिक शक्तियों की अभिव्यक्ति में मानव के संकल्प की आग के दर्शन हों।"[11]

अर्थात् प्रत्येक ऐतिहासिक घटना का इतिहास होता है, जो समाज को तत्कालीन या समकालीन रूप में प्रभावित करता है। मुक्तिबोध इतिहास के प्रति गहरे संवेदनशील कवि एवं आलोचक हैं। इतिहास का मूल्यांकन किये बगैर उसके समस्त पक्षों एवं तत्वों का उल्लेख ईमानदारी से नहीं किया जा सकता। इसीलिए मुक्तिबोध 'ऐतिहासिक घटना' एवं 'साहित्य-सृजन' में लेखक की सहधर्मिता का उल्लेख करते हैं।

मुक्तिबोध आलोचना एवं उसकी पर्यायता पर भी बेबाकी से अपने विचार प्रकट किया हैं। उनके अनुसार- "आलोचक की आलोचना के लिए भी आलोच्य आलोचक के व्यक्तित्व के स्तर का प्रश्न उतना ही महत्वपूर्ण है। असल बात यह है कि व्यक्ति अनुभवककर्त्ता है। कर्त्ता, कर्म और क्रिया की लड़ी में कर्त्ता का स्थान कर्म और क्रिया की बराबरी का है।"[12] अर्थात् 'कर्त्ता' के व्यक्तित्व एवं उसका कर्म ही आलोचना की सारग्रभिता एवं तार्किकता को प्रस्तुत करेगा। आलोचक को साहित्य के 'परिपक्वता' एवं 'मर्म' का ज्ञान होना आवश्यक है। आलोचक किसी आलोचना का तार्किक स्वाँग नहीं करता, अपितु उसकी वस्तुनिष्ठता का मूल्यांकन करता है। इस संदर्भ में हजारीप्रसाद द्विवेदी के विचार

द्रष्टव्य हैं- "मनुष्य की जो सबसे सूक्ष्म और महनीय साधना है उसी का प्रकाश साहित्य है।"[13] साहित्य मानव इतिहास के स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों तत्वों का विवेचन करता है, इसीलिए इसे साधनात्मकता की दृष्टि से देखते हैं।

आलोचना विचारों की निरंतर चलने वाली एक प्रक्रिया है जो पूर्वोत्तर एवं उत्तरोत्तर दोनों से प्रभावित है। यह मानव संबंध के संपूर्ण सामाजिक सांस्कृतिक एवं राजनीतिक प्रक्रिया का हिस्सा है। इस संदर्भ में मुक्तिबोध का कहना है- "विचारों का चरित्र से बहुत गहरा संबंध होता है। कभी-कभी वह प्रत्यक्ष और स्पष्ट दिखायी देता है, कभी-कभी वह अस्पष्ट और अप्रत्यक्ष। इसका मतलब यह नहीं है कि विचारों का तर्क-सिद्ध अथवा अनुभव-सिद्ध प्रभागों से अथवा परम्परा से संबंध नहीं होता।"[14]

मुक्तिबोध की 'एक साहित्यिक की डायरी' की संवाद प्रक्रिया में रचना, आलोचना एवं सृजनतत्व के तमाम पहलू को तर्कसंगत रूप से प्रस्तुत किया गया है। मुक्तिबोध अपने या अपने से इतर भौगोलिक परिवेश में रहकर या अनुभूत करके प्रगतिशील विचार को इसे साहित्यिक रूप में प्रदान किया है। इस संदर्भ में नामवर सिंह का मानना है- "लिखने को तो कई लोगों ने वार्तालाप-शैली में आलोचनाएँ लिखी हैं, लेकिन एक नजर में ही साफ हो जाता है कि वे मूलतः निबंध हैं। दरअसल, इसके पीछे एक पूरी जीवन-प्रक्रिया है।"[15] मुक्तिबोध के संबंध में नामवर सिंह की यह उक्ति तर्कसंगत प्रतीत होती है, क्योंकि उनकी रचना, आलोचना एवं सृजनतत्व में उनके 'जीवन-प्रक्रिया' की झलक यथार्थ रूप में चित्रित हुई है।

हिंदी साहित्य में जयंशकर प्रसाद कृत 'कामायनी' को एक महत्वपूर्ण महाकाव्य माना जाता है। स्वयं जयशंकर प्रसाद 'कामायनी' के आमुख में लिखते हैं- "यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्भूत मिश्रण हो गया है। इसीलिए मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष, हृदय और मस्तिष्क का संबंध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है।"[16]

स्थूल रूप में 'कामायनी' की कथा का आरंभ भीषण जलप्लावन से शुरू होता है, जिसके परिणामस्वरूप देव संस्कृति का विनाश हो जाता है। केवल मनु जीवित बचते हैं। श्रद्धा और मनु के मिलन से नई सृष्टि, सभ्यता और संस्कृति का उदय होता है। इस कथा में नया प्रसंग या नई दृष्टि का विकास तब होता है, जब मनु की भेंट इड़ा से सारस्वत प्रदेश में होता है। वहाँ उसके सहयोग से शासन व्यवस्था कायम करते हैं। जहाँ मनु का चरित्र भोग, विलास और ऐश्वर्य में डूब जाता है।

शासन और सत्ता के मद में जब मनु बलपूर्वक इड़ा पर काबू पाने का प्रयास करता है, जब प्रजा में विभेद शुरू हो जाता है और युद्ध छिड़ जाता है। मनु घायल अवस्था में होता है। इस संपूर्ण कथा-विन्यास के संबंध में अलग-अलग आलोचकों ने अलग-अलग तरीके से दृष्टिपात किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार- "यदि हम इस विशद काव्य की अन्तर्योजना पर न ध्यान दें, समष्टि-रूप में कोई समन्वित प्रभाव न ढूँढे, श्रद्धा, काम, लज्जा, इड़ा इत्यादि को अलग-

अलग ले तो हमारे सामने बड़ी ही रमणीय, चित्रमयी कल्पना, अभिव्यंजना की अत्यन्त मनोरम पद्धति आती है। इन वृत्तियों की अभ्यन्तर प्रेरणाओं और बाह्य प्रवृत्तियों को बड़ी मर्मिकता से परख कर इनके स्वरूपों की नराकार उद्भावना की गई है। स्थान-स्थान पर प्रकृति की मधुर, भव्य और आकर्षण विभूतियों की योजना का तो कहना ही क्या है। प्रकृति के ध्वंसकारी भीषण रूपवेज का अत्यन्त व्यापक परिधि के बीच चित्रण हुआ है। इसप्रकार प्रसाद जी प्रबन्ध-क्षेत्र में भी छायावाद की चित्र-प्रधान और लाक्षणिक शैली की सफलता की आशाएँ बँधा गये हैं।"[17]

आचार्य नंददुलारे वाजयपेयी के अनुसार- "प्रसाद जी ने कामायनी के नायक और नायिका मनु और कामायनी का स्वरूप वैज्ञानिक भूमि पर स्थिर किया है। पुरूष और नारी की विज्ञान-सम्मत प्रकृति और प्रवृत्ति का चित्रण मनु और कामायनी के रूप में करने की चेष्टा की है। पुरुष और नारी-प्रकृति क्या है? सभ्यता, इतिहास और परम्परा के आवरणों को अलग कर देने पर मूलतः वे क्या रह जाते हैं?- यही कामायनी और मनु के स्वरूपों में दिखाया गया है।"[18]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार- "कामायनी में आरंभ का दबा हुआ सलज्य भाव विभिन्न सर्गों में स्पष्ट और प्रौढ़ अभिव्यक्ति पाता है। यह क्रम सिद्ध करता है कि वे गंभीर अध्ययन, चिंतन और मनन के माध्यम से अपने भीतर के सौन्दर्य प्रेमी मनोभाव को रहस्यवादी कविता के आवरण में प्रकट कर सके हैं। उन्हें अपने इस विशिष्ट स्वभाव का स्पष्ट और प्रौढ़ समर्थन प्रत्यशिक्षा दर्शन में मिलता है।"[19]

इन तमाम आलोचकों ने 'कामायनी' महाकाव्य पर अपने-अपने विचारों के अनुकूल दृष्टिपात किया है। मुक्तिबोध उपर्युक्त आलोचकों की तुलना में बिल्कुल भिन्न दृष्टि 'कामायनी' महाकाव्य के प्रति रखते हैं। इसके लिए उन्होंने छायावादी काव्य की पृष्ठभूमि एवं उसकी प्रासंगिकता का भी उल्लेख किया है। उनके अनुसार- "छायावाद में वर्णित करूणा व्यक्ति की वास्तविक करूणा नहीं, जिंदगी के भीतर करूणास्पद परिस्थितियों से उत्पन्न मनोभावों का चित्रण नहीं। वह कुछ और ही है, जिसमें करूणा का विलास है, उसकी तकलीफ नहीं।"[20] मुक्तिबोध ने छायावादीयुगीन रचनाओं का मनोविश्लेषणात्मक विश्लेषण किया है। मुक्तिबोध तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थिति के बीच साहित्य के सतही पक्ष को प्रमुखता से उजागर किया है।

मुक्तिबोध कामायनी की आलोचना बड़े ही व्यापक स्तर से किया है- "कामायनी उस अर्थ में कथा-काव्य नहीं है कि जिस अर्थ में साकेत है। कामायनी की कथा केवल एक फैण्टेसी है। जिस प्रकार एक फैण्टेसी में मन की निगूढ़ वृत्तियों का, अनुभूत जीवन-समस्याओं का इच्छित विश्वासों और इच्छित जीवन-स्थितियों का, प्रक्षेप होता है, उसी प्रकार कामायनी में भी हुआ है।"[21] मुक्तिबोध ने कामायनी की आलोचना का एक व्यवस्थित रूपरेखा रखी, जिसमें तत्कालीन परिवेश के ऐतिहासिक पूँजीवादी स्वरूप का विश्लेषण प्रस्तुत किया। उन्होंने फैन्टेसी शिल्प के वास्तविक पहलुओं को मनोवैज्ञानिक एवं यथार्थवादी दोनों रूपों में अभिव्यक्त किया है। कामायनी में भी उन्होंने विश्वात्मक बोध की व्याख्या की है। सत्ता और समाज के बीच चल रहे द्वंद्व का चित्रण भी उनके आलोचना में प्रखरता से चित्रित हुआ है। मनु और श्रद्धा के माध्यम से जीवनमूल्य का चित्रण

किया है। आधुनिक समाज में पूँजी का संबंध उत्पादन, व्यापार एवं व्यापारिक शक्तियों में निहित होती है। मुक्तिबोध इसी पूँजीवादी व्यवस्था शासन-व्यवस्था के बीच के मकड़जाल को शब्दबद्ध किया है। मुक्तिबोध की दृष्टि में प्रसाद की इतिहासदृष्टि तार्किक नहीं थी। इसीलिए वे समाज और जाति के विषय में सोचना प्रारंभ किया- "प्रसादजी के मानव इतिहास सभ्यता के इतिहास का वैज्ञानिक अध्ययन न था।"[22] मुक्तिबोध जयशंकर प्रसाद के इतिहासदर्शन के वैज्ञानिक पहलुओं की ओर ध्यानाकर्षित किया है। आधुनिक सभ्यता और समाज की समस्या का मूल्यांकन तर्कसंगत रूप से प्रसाद की कामायनी नहीं कर पाती है। मुक्तिबोध तत्कालीन आलोचकों से भिन्न एवं लीक से हटकर इसलिए भी है, क्योंकि वे इतिहास के बनते-बिगड़ते पहलुओं की तार्किक व्याख्या करते हैं। कामायनी के संबंध में भी जयशंकर प्रसाद के इतिहासबोध से बिल्कुल प्रभावित नहीं है। उनका विचार है- "प्रसादजी को समाज और जाति ने, अर्थात् आधुनिक जीवन-जगत् ने, जो दृष्टि प्रदान की वह भी राष्ट्रवादी सांस्कृतिक अभ्युत्थान से प्रेरित। प्रसाद ने अतीत के गौरवमय चित्र उपस्थित कर इस राष्ट्रीय सांस्कृतिक अभ्युत्थान में योग दिया।"[23]

कामायनी में मुख्य पात्र के तौर पर मनु, श्रद्धा, इड़ा का व्यापक विस्तार अलग-अलग संदर्भों में किया गया है। ये तीनों पात्र सभ्यता प्रदत्त है। जो हजारों सालों पूर्व की एक कथा है। इन तीनों पात्रों के चरित्र में भी भिन्नता है। डॉ. मैनेजर पांडेय के अनुसार- "कामायनी में मनु और श्रद्धा के चरित्र के माध्यम से जिस व्यक्तिवाद और श्रद्धावाद की प्रतिष्ठा हुई है, उन दोनों की मुक्तिबोध ने कड़ी आलोचना की है।"[24] श्रद्धावाद के संबंध में मुक्तिबोध ने लिखा है- "श्रद्धावाद,

श्रद्धा के चरित्र से उभरकर, यह उद्घाटित करता है कि हमारा तथाकथित भाववाद-आदर्शवाद, अन्ततः किसप्रकार प्रस्तुत पूँजीवादी विषमताओं के लिए क्षमाप्रार्थी होकर पूँजीवादी व्यक्तिवादियों को सिर्फ नसीहत देता है, और बाद में उन्हीं से समझौता कर लेता है। वह रहस्यवाद आदर्शवाद, वस्तुतः आत्मविरोधों से ग्रस्त पूँजीवाद तथा व्यक्तिवाद का दार्शनिक डिफेंस है, और कुछ नहीं।"[25] इड़ा शोषण और सत्ता का अंत नहीं चाहती है। वह इस अनाचार की भागीदार इसीलिए है, क्योंकि वह शासन पर 'योग्यतम विजय' चाहती है। मुक्तिबोध ने इड़ा के चरित्र के माध्यम से शासन, सत्ता एवं नियम के वैविध्य प्रसंग को उजागर किया है। प्रतिस्पर्धा पूँजीवादी व्यवस्था के स्वामित्व एवं अधिकार को फलने-फूलने में मदद करती है। इसीलिए मुक्तिबोध इस जटिल तंत्र के खिलाफ लगातार संघर्षरत रहे हैं। इड़ा को प्रसाद ने बुद्धिवाद के प्रसंग में उल्लेख किया है। मुक्तिबोध ने इड़ा के संदर्भ में लिखा है- "वस्तुतः इड़ा बुद्धिवाद का प्रतीक न होकर, स्वयं श्रद्धा अ-बुद्धिवादी है, अर्थात् बुद्धि से अतीत अनुभूति के माध्यम से ही श्रद्धा विश्व-रहस्य समझती है।"[26]

प्रसाद ने कामायनी में रहस्य, आनंद एवं दर्शन आदि का उल्लेख किया है। मुक्तिबोध की दृष्टि में 'कामायनी' में उल्लेखित रहस्य, दर्शन एवं आनंद प्रसाद की दृष्टि से भिन्न है। उन्होंने कामायनी को मूल समस्या के तौर पर देखा है। और इसे 'मूल समस्या से पलायन' की भी संज्ञा दी है।

वस्तुतः 'कामायनी: एक पुनर्विचार' आधुनिक समाज की निर्मिति में ऐतिहासिक तत्वों उसके जीवनमूल्य एवं विश्वात्मक इतिहासबोध की व्याख्या की

है। आधुनिक समाज, यांत्रिकी समाज है। जिसमें अनेक प्रकार की विषमता एवं भिन्नता देखने को मिलती है। शासन, सत्ता एवं पूँजी का असमान वितरण एवं वर्चश्व की प्रतिस्पर्धा। मेरी दृष्टि में कामायनी का इतिहासबोध आधुनिक समाज के शासन सत्ता एवं वर्चश्व के बीच पूँजी की भूमिका को भी रेखांकित करता है।

मुक्तिबोध ने सन् 1950 के दशक के आसपास विश्व में घट रही घटनाओं का तार्किक विवेचन किया है। हिंदी साहित्य में जिसे हम 'नयी कविता' कहते हैं। इसका विकास प्रयोगवाद के बाद माना जाता है। स्वतंत्रता के पश्चात् देश में अनेक प्रकार का आंतरिक कलह शुरू हुआ। वर्ग-संघर्ष, भाषायिक मतभेद, राजनैतिक वर्चश्वता इत्यादि का संघर्ष शुरू हुआ, जो कहीं न कहीं समाज और साहित्य के विमर्श को प्रभावित किया। इसी समयातंराल को प्रयोगवाद और नयी कविता के विविध-प्रसंग एवं पहलुओं में देखते हैं। प्रगतिशील समाज एक नवीन पदक्रम को जीवंतता प्रदान करता है। मुक्तिबोध के मतानुसार- "नये मूल्यों का जन्म नयी परिस्थितियों की सार्वजनिकता से होता है।"[27] 'नयी कविताः एक दायित्व' निबंध में लेखक आधुनिक पूँजीवादी समाज के बनते स्वरूप में वर्ग विभाजन के संदर्भ को उजागर किया। अर्थात् धनी वर्ग धनी होता जा रहा है और गरीब वर्ग और भी गरीब। समाज पर इसका अभूतपूर्व रूप से प्रभाव पड़ा है। क्योंकि इससे समाज में आर्थिक विभेद उत्पन्न होता है, जो समाज को आंतरिक एवं बाह्य दोनों रूपों में प्रभावित करता है। इस द्वंद्व का शिकार सबसे ज्यादा माध्यम एवं निम्न वर्ग के लोग होते हैं।

मुक्तिबोध ने 'नयी कविता' के उदय को 'छायावादी व्यक्तिवाद के विरूद्ध यथार्थोन्मुख व्यक्तिवाद की बगावत' करार दिया है। इस दौर की कविता में बौद्धिकता का प्राधान्य है और यथार्थवादी आत्मचेतना की उन्मुखता भी। मुक्तिबोध के अनुसार- "नयी कविता का कवि जगत और जीवन से, सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति-परिस्थिति से, जागरूक रहा। किंतु उसकी उनके प्रति मानसिक प्रतिक्रियाएँ अंतर्मुखी, भावप्रवण और निबिड़ आत्ममूलक रही।"[28] नयी कविता अपने विमर्श में अनेक पहलुओं को उजागर करती है। वह परम्परा, प्रगति एवं आधुनिकता के पक्षों का उल्लेख करती है। इस संबंध में रामस्वरूप चतुर्वेदी के विचार दृष्टव्य है- "नयी कविता में मनुष्य और उसके समग्र अनुभव को पकड़ने का यत्न हुआ है। यों मनुष्य को उसकी संपूर्णता में देखने और समझने की प्रतिज्ञा हर नये वैचारिक और रचना-आंदोलन ने की है- 15वीं शती के यूरोपीय पुनर्जागरण से लेकर 20वीं शती की हिंदी छायावादी कविता। पुनर्जागरण का प्रधान बल समग्र मनुष्य ('होल मैन') की धारण पर था, और आधुनिक हिंदी कवि भी कहता है कि जाति, वर्ण, संस्कृति, समाज से मूल 'मूल व्यक्ति' को फिर से चाल कर निकाला जाए।"[29] नयी कविता जीवन के प्रति आस्था को अभिव्यक्त करती है। नयी कविता युगीन संदर्भ में जीवनबोध, सौन्दर्यबोध और लघुमानव के जिस बोध को प्रस्तुत कर रही है वह आधुनिकता के साथ-साथ समसामायिक भावबोध भी उल्लेखित करती है। 'नयी कविता' अपने कथा एवं विन्यास में अलग पृष्ठभूमि रखती है। भारतभूषण अग्रवाल का मानना है- नयी कविता यथार्थ में संपृक्त है वह कोरी कल्पना की कला को रेत का महल मानती है। मुक्तिबोध ने भी नयी कविता को 'व्यक्ति-मन की प्रतिक्रिया' कहा है। मुक्तिबोध ने नयी कविता

के कथ्य, प्रकृति एवं प्रवृत्ति का मूल्यांकन विविध रूप में करते हैं। वे समाज में घटित घटनाओं को आंतरिक एवं बाह्य प्रक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न स्थिति से जोड़ते हैं। मुक्तिबोध ने विचारधारा का संबंध चेतनात्मक समृद्धि से जोड़ा है। चेतना का संबंध आसपास के वातावरण में घट रहे घटनाओं का इतिहास भी है और बोध भी। इसीलिए मुक्तिबोध इतिहासबोध एवं विश्वबोध की बात वैचारिक दृष्टि से करते हैं। कलाकार का भाव संवेदन पक्ष ही मानव संबंध के बीच सेतु का काम करता है। इतिहास में मानव समस्या जितनी है उनती ही द्वंद्व भी। मुक्तिबोध ने 'संवेदनात्मक ज्ञान' को महत्वपूर्ण माना है। वे ज्ञान एवं भाव, दोनों के विस्तार के पक्षधर हैं। नयी कविता पर द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद शीत युद्ध का भी प्रभाव रहा। इस शीतयुद्ध के दौरान साहित्य के रूप एवं अंतर्वस्तु के स्वरूप में भी बदलाव देखा गया। कला के सौन्दर्यात्मक पक्ष एवं उसके चिंतन तत्व पर भी विचार किया गया। मुक्तिबोध ने इसके ऐतिहासिक प्रक्रिया के विषय में लिखा है- "निःसंदेह, नयी कविता की एक फिलॉसफी के रूप में कला सिद्धांत लाया गया। कला-सिद्धांत के पीछे सामाजिक-साहित्य मनोवृत्तियों का विश्लेषण करनेवाला 'आधुनिक भाव-बोध' का सिद्धांत आया और 'व्यक्ति-स्वातन्त्र्य' के नाम पर एक सामाजिक-राजनैतिक दर्शन भी समर्थन और विस्तार में ही आये। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है।"[30]

प्रत्येक रचनाकार का आलोचनात्मक इतिहास बोध भिन्न होता है। मुक्तिबोध की रचना-प्रक्रिया में व्यक्ति और समाज के अधिकांश घटक तत्व का विवेचन तार्किक रूप से हुआ है। उनका सौन्दर्यबोध प्रसाद और निराला के सौन्दर्यबोध से भिन्न हैं। वे वर्ग-संघर्ष एवं वर्ग चेतना की अनुभूति को जनपक्षीय

दृष्टि से मूल्यांकित किये हैं। इसीलिए उनकी रचनाओं में इतिहास भी है और मनोविज्ञान भी।

मुक्तिबोध समाज की संरचना उसके सामाजिक यथार्थ एवं राजनैतिक व्यवस्था के बदलते स्वरूप को गंभीरता से अभिव्यंजित किया है। उनकी रचनाओं में संवेदना भी है और चिंतन भी। वे समाज की मूलभूत आवश्यकता को समान दृष्टि से देखने के पक्षधर हैं। इसीलिए मुक्तिबोध ने पूँजीवादी साम्राज्यवादी व्यवस्था में निम्न, मध्य एवं उच्च वर्ग की स्थिति का चित्रण प्रमुखता से किया है। और इस व्यवस्था को प्रगतिशील समाज के लिए ह्रासग्रसित बताया है। इसका अनुमान हम पूँजीपति एवं निम्न वर्ग के लोगों के जीवनयापन एवं जीवनशैली से लगा सकते हैं।

मुक्तिबोध का आलोचनात्मक अवदान आधुनिक हिंदी साहित्य में व्यापक फलक प्रदान करता है। आलोचना एवं आलोचक, मुक्तिबोध से पहले भी हुए हैं। लेकिन आलोचना के तार्किक एवं मनोवैज्ञानिक पहलुओं को वैचारिक दृष्टि मुक्तिबोध ने गहनता से प्रदान की है। आलोचना और इतिहास का तार्किक विवेचन, उसके इतिहासबोध का तर्कसंगत स्वरूप, उनकी रचना-प्रक्रिया में प्रौढ़ता से उजागर होती है। 'एक साहित्यिक की डायरी' रचना एवं आलोचना के संवाद को व्याख्यायित करता है। 'कामायनी: एक पुनर्विचार' में लेखक की ऐतिहासिक दृष्टि एवं वैज्ञानिक बोध का भाव उजागर होता है। आधुनिक सभ्यता के विकास में यांत्रिकी एवं पूँजीवादी-साम्राज्यवादी विस्तार

को प्रमुखता से देखा जा सकता है। मुक्तिबोध ने शासन एवं सत्ता के बीच सत्ताकेन्द्रित व्यक्ति के उपभोगी मनोवृत्ति का भी विवेचन किया है।

मेरी दृष्टि में कोई भी रचनाकार लगातार अपने और आसपास में घटित जीवनानुभूत तत्वों से सीखता है और उससे स्व-संघर्ष भी करता है। रचनात्मक अनुभूति भी इसी प्रक्रिया का एक हिस्सा है। मुक्तिबोध की रचना एवं आलोचना में जीवनानुभूत तत्वों का गहन चिंतन है। जिसमें इतिहास भी है, इतिहासबोध भी है और वैज्ञानिक चिंतन भी।

संदर्भ

1. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-5); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, तीसरी आवृत्ति:2011,पृ. सं.- 19

2. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-5); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, तीसरी आवृत्ति:2011,पृ. सं.- 19

3. कुमार, वीरेश (संपा.); रामधारी सिंह दिनकर संकलित निबंध, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली; संस्करण: 2010, पृ. सं.- 27

4. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-5); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, तीसरी आवृत्ति:2011, पृ. सं.- 22

5. ठाकुर, खगेन्द्र (सं.); नामवर सिंह (प्र. संपा.); प्रेमचंद प्रतिनिधि संकलन, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली; संस्करण: 2002, तीसरी आवृत्ति: 2013, पृ. सं.- 16

6. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-5); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, तीसरी आवृत्ति:2011, पृ. सं.- 24

7. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-5); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, तीसरी आवृत्ति:2011, पृ. सं.- 25

8. 'अज्ञेय', सच्चिदानन्द वात्स्यायन; सर्जना और संदर्भ नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली; संस्करण: 1985, पृ. सं.- 1

9. सिंह, नामवर; वाद विवाद संवाद; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 2007, पृ. सं.- 11

10. मुक्तिबोध, गजानन माधव; एक साहित्यिक की डायरी; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; संस्करण: 2014, पृ. सं.- 20-21

11. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-4); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, तीसरी आवृत्ति:2011,पृ. सं.- 18

12. द्विवेदी, हजारीप्रसाद; विचार प्रवाह; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1984, पृं. सं.- 169

13. द्विवेदी, हजारीप्रसाद; विचार प्रवाह; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1984, पृ. सं.- 169

14. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-4); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, तीसरी आवृत्ति:2011, पृ. सं.- 97

15. सिंह, नामवर; वाद विवाद संवाद; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 2007, पृ. सं.- 12

16. प्रसाद, जयशंकर; कामायनी; राजकमल प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 2012, पृ. सं.- 8-9

17. मदान, इन्द्रनाथ (संपा.); कामायनी: मूल्यांकन और मूल्यांकन; नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद; संस्करण: 1969, पृ. सं.- 17-18

18. मदान, इन्द्रनाथ (संपा.); कामायनी: मूल्यांकन और मूल्यांकन; नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद; संस्करण: 1969, पृ. सं.- 18

19. मदान, इन्द्रनाथ (संपा.); कामायनी: मूल्यांकन और मूल्यांकन; नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद; संस्करण: 1969, पृ. सं.- 10

20. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-5); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, तीसरी आवृत्ति:2011, पृ. सं.- 311

21. मुक्तिबोध, गजानन माधव; कामायनी: एक पुनर्विचार; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 2010, पृ. सं.- 8

22. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-4); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, तीसरी आवृत्ति:2011,पृ. सं.- 201

23. मुक्तिबोध, गजानन माधव; कामायनी एक पुनर्विचार, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 2010, पृ. सं.- 16

24. पांडेय, डॉ. मैनेजर; अनभै साँचा; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 2012, पृ. सं.- 228

25. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-4); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, तीसरी आवृत्ति:2011, पृ. सं.- 282

26. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-4); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, तीसरी आवृत्ति:2011, पृ. सं.- 298

27. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-5); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, तीसरी आवृत्ति:2011, पृ. सं.- 297

28. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-5); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, तीसरी आवृत्ति:2011, पृ. सं.- 313

29. चतुर्वेदी, रामस्वरूप; हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद; संस्करण: 2010, पृ. सं.- 234

30. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-5); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, तीसरी आवृत्ति:2011, पृ. सं.- 324